(देश देशान्तरों में प्रचारित, उच्च कोटि का अध्यात्मिक मासिक-पत्र)

सन्देश नहीं मैं स्वर्ग लोक का लाई।
इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आई॥

वार्षिक मूल्य २) सम्पादक—श्रीराम शर्मा आचार्य। एक अंक

वर्ष ६ मथुरा, १ दिसम्बर सन् १९४५ ई० अंक १

इन्द्रियों के गुलाम नहीं, स्वामी बनिए !

जो आदमी केवल इन्द्रिय-सुखों और शारीरिक वासनाओं की तृप्ति के लिए जीवित है और जिस के जीवन का उद्देश्य 'खाओ, पीओ, मौज उड़ाओ' है। निस्संदेह वह आदमी परमात्मा की इस सुन्दर पृथ्वी पर एक कलङ्क है, भार है। क्यों कि उसमें सभी परमात्मीय गुण होते हुए भी वह एक पशु के समान नीच वृत्तियों में फँसा हुआ है। जिस आदमी मे ईश्वरीय अंश विद्यमान है, वही अपने सुख से हमें अपने पतित जीवन की दुख भरी गाथा सुनाता है !! यह कितने दुख की बात है। जिस आदमी का शरीर सूजा हुआ, भद्दा, लज्जा युक्त, दुखी और रुग्ण है, व इस सत्य की घोषणा करता है कि जो आदमी विषय वासनाओं की तृप्ति में अन्धा धुन्ध, बिना आगा पीछा देखे, लगा रहता है, वही शारीरिक अपवित्रताओं, यातनाओं को सहता है।

वास्तव में आदर्श मनुष्य वही है, जो समस्त पाशविक वृत्तियों तथा विषय वासनाओं को रखता हुआ भी उनके ऊपर अपने सुसंयता तथा सुशासक मन से राज्य करता है, जो अपने शरीर का स्वामी है, जो अपनी समस्त विषय वासनाओं की लगाम को अपने दृढ़ तथा धैर्य युक्त हाथों में पकड़ कर अपनी प्रत्येक इन्द्रिय से कहता है कि तुम्हें मेरी सेवा करनी होगी, न कि मालिकी। मैं तुम्हारा सदुपयोग करूंगा दुरुपयोग नहीं। ऐसे ही मनुष्य अपनी समस्त पाशविक वृत्तियों तथा वासनाओं की शक्तियों को देवत्व में परिणत कर सकते हैं। विलास मृत्यु है और संयम जीवन है। सच्चा रसायन शास्त्री वही है जो विषम वासनाओं के लोहे को आध्यात्मिक तथा मानसिक शक्तियों के स्वर्ण में पलट लेता है।

'अखण्डज्योति' का अमूल्य प्रकाशन !

जो ज्ञान कठिन के प्रयत्न से मिलता है, उसे हम अनायास ही आपके संमुख उपस्थित करते हैं।

यह बाजारू पुस्तकें नहीं हैं। इनकी एक एक पंक्ति में लेखकों का चिरकालीन अनुभव और अभ्यास भरा हुआ है। इन पुस्तकों को पढ़कर आप वह लाभ प्राप्त करेंगे जो इनके मूल्य के पैसों से अनेक गुना अधिक है।

(१) मैं क्या हूँ ||=)
(२) सूर्य चिकित्सा विज्ञान |=)
(३) प्राण चिकित्सा विज्ञान |=)
(४) परकाया प्रवेश |=)
(५) स्वस्थ और सुन्दर बनने की अद्भुत विद्या |=)
(६) मानवीय विद्युत के चमत्कार |=)
(७) स्वर योग से दिव्य ज्ञान |=)
(८) भोग में योग |=)
(९) बुद्धि बढ़ाने के उपाय |=)
(१०) धनवान बनने के गुप्त रहस्य |=)
(११) पुत्र या पुत्री उत्पन्न करने की विधि |=)
(१२) वशीकरण की सच्ची सिद्धि |=)
(१३) मरने के बाद हमारा क्या होता है |=)
(१४) जीव जन्तुओं की बोली समझना |=)
(१५) ईश्वर कौन है ? कहां है ? कैसा है ? |=)
(१६) क्या धर्म ? क्या अधर्म ? |=)
(१७) गहना कर्मणोगति |=)
(१८) जीवन की गूढ़ गुत्थियों पर तात्विक प्रकाश |=)
(१९) शक्ति संचय के पथ पर |=)
(२०) पंचाध्यायी धर्म नीति शिक्षा |=)
(२१) आत्म गौरव की साधना |=)
(२२) प्रतिष्ठा का उच्च सोपान |=)
(२३) मित्र भाव बढ़ाने की कला |=)
(२४) आन्तरिक उल्लास का विकाश |=)
(२५) आगे बढ़ने की तैयारी |=)
(२६) अध्यात्म धर्म का अवलम्बन |=)
(२७) ब्रह्म विद्या का रहस्योद्घाटन |=)
(२८) ज्ञान योग कर्म योग भक्तियोग |=)
(२९) यम नियम |=)
(३०) आसन और प्राणायाम |=)
(३१) प्रत्याहार धारणा ध्यान और समाधि |=)
(३२) तुलसी के अमृतोपम गुण |=)
(३३) आकृति देख कर मनुष्य की पहिचान |=)
(३४) मैस्मरेजम की अनुभव पूर्ण शिक्षा |=)
(३५) ईश्वर और स्वर्ग प्राप्ति का सच्चा मार्ग |=)
(३६) हस्तरेखा विज्ञान |=)
(३७) विवेक सतसई |=)
(३८) संजीवनी विद्या |=)
(३९) गायत्री की चमत्कारी साधना |=)
(४०) महान जागरण |=)
(४१) तुम महान हो |=)
(४२) गृहस्थ योग |=)
(४३) अमृत पारस और कल्पवृक्ष की प्राप्ति |=)
(४४) घरेलू चिकित्सा |=)
(४५) बिना औषधि के कायाकल्प |=)
(४६) पंच तत्वों द्वारा संपूर्ण रोगोंका निवारण |=)
(४७) हमें स्वप्न क्यों दीखते हैं ? |=)
(४८) विचार करने की कला |=)

कमीशन देना क़तई बन्द है। हां आठ या इससे अधिक पुस्तकें लेने पर डाक खर्च हम अपना लगा देते हैं। आठ से कम पुस्तकें मँगाने पर रजिस्ट्री पार्सल का डाक खर्च ग्राहक को देना पड़ता है।

पता—मैनेजर "अखण्ड ज्योति" मथुरा।

सूचना—अखंडज्योति के पुराने अंकों की अक्सर पाठक मांग किया करते हैं। परन्तु कागज की दुर्लभता के कारण फालतू अङ्क बचते नहीं। सन् ४० से ४५ तक के ५ वर्षों के कुल मिलाकर १२ अङ्क हमारे पास मौजूद हैं। इनका मूल्य १।।) और रजिस्ट्री से भेजने का अतिरिक्त खर्च =) है। जिन्हें

मथुरा, १ दिसम्बर सन् १९४५

आस्तिक बनो।

———

परमात्मा सर्वत्र व्यापक है, इस सत्य को जानते तो अनेक लोग हैं पर उसे मानते नहीं। व्यवहार में नहीं लाते। जो परमात्मा को सर्व व्यापी, घट घट वासी मानेगा, उसका जीवन उसी क्षण पूर्ण पवित्र, निष्पाप और कषाय कल्मषों से रहित हो जायगा। गीता में भगवान ने कहा है कि जो मेरी शरण में आता है, जो मुझे अनन्य भाव से भजता है वह तुरन्त ही पापों से छूट जाता है। निस्संदेह बात ऐसी ही है। भगवान की शरण में जाने वाला, उस पर सच्चा विश्वास करने वाला, उस पर पूर्ण आस्था रखने वाला, एक प्रकार से जीवन मुक्त ही हो जाता है।

ईश्वर का विश्वास और सच्चा जीवन एक ही वस्तु के दो नाम हैं। जो भगवान का भक्त है, जिसने सब छोड़ कर प्रभु के चरणों में आत्म समर्पण कर दिया है, जो परमात्मा की उपासना करता है उसे जगत्पिता की सर्व व्यापकता पर आस्था जरूर होनी चाहिए। यदि यह विश्वास दृढ़ हो जाय कि भगवान जर्रे जर्रे में समाया हुआ है, हर जगह मौजूद है तो पाप कर्म करने का साहस ही नहीं हो सकता। ऐसा कौन सा चोर है जो सावधान खड़ी हुई सशस्त्र पुलिस के सामने चोरी करने का साहस करे, चोरी, व्यभिचार, ठगी, धूर्तता, दंभ, असत्य, हिन्सा आदि के लिए आड़ की, पर्दे की, दुराव की जरूरत पड़ती है। जहां मौका होता है, इन बुरे कामों को पकड़ने वाला नहीं होता, वहीं इनका किया जाना संभव है। जहां धूर्तता को भली प्रकार समझने वालों देखने वाले और पकड़ने वाले लोगों की मजबूत ताकत सामने खड़ी होती है। वहां पाप कर्मों का हो सकना संभव नहीं। इसी प्रकार जो इस बात पर सच्चे मन से विश्वास करता है कि परमात्मा सब जगह मौजूद है वह किसी भी दुष्कर्म के करने का साहस नहीं कर सकता।

बुरा काम करने वाला पहले यह भली प्रकार देखता है कि मुझे देखने वाला या पकड़ने वाला तो कोई यहां नहीं है। जब वह भली भांति विश्वास कर लेता है कि उसका पाप कर्म किसी की दृष्टि या पकड़ में नहीं आ रहा है तभी वह अपने काम में हाथ डालता है। इसी प्रकार जो व्यक्ति अपने को परमात्मा की दृष्टि या पकड़ से बाहर मानते हैं वे ही दुष्कर्म करने को उद्यत हो सकते हैं। पाप कर्म करने का स्पष्ट अर्थ यह है कि यह व्यक्ति ईश्वर का मानने का दंभ भले ही करता हो पर वास्तव में वह परमात्मा के आस्तित्व से इनकार करता है। उसके मन को इस बात पर भरोसा नहीं है कि परमात्मा यहां मौजूद है। यदि विश्वास होता तो इतने बड़े हाकिम के सामने किस प्रकार उसके कानूनों को तोड़ने का साहस करता है। जो व्यक्ति एक पुलिस के चपरासी को देखकर भय से थर थर कांपा करते हैं वे लोग इतने दुस्साहसी नहीं हो सकते कि परमात्मा जैसे सृष्टि के सर्वोच्च अफसर की आंखों के आगे, न करने योग्य काम करें, उसके कानून को तोड़ें, उसको क्रुद्ध बनावें, उसका अपमान करें।

ना दुस्साहस तो सिर्फ वही कर सकता है जो
ह समझता हो कि 'परमात्मा' कहने सुनने भर की
ोज़ है। वह पोथी पत्रों में, मन्दिर मठों में नदी
ालाबों में या कहीं स्वर्ग नरक में भले ही रहता
ोगा, पर हर जगह वह नहीं है। मैं उसकी दृष्टि और
कड़ से बाहर हूँ।

जो लोग परमात्मा की सर्व व्यापकता पर
िश्वास नहीं करते, वे ही नास्तिक हैं। जो प्रकट
ा अप्रकट रूप से दुष्कर्म करने का साहस कर
कते हैं वे ही नास्तिक हैं। इन नास्तिकों में कुछ तो
ूजन पूजा बिलकुल नहीं करते, कुछ करते हैं। जो
हीं करते वे सोचते हैं व्यर्थ का झंझट मोल लेकर
समें समय गँवाने से क्या फायदा? जो पूजन
ाजन करते हैं वे भीतर से तो न करने वालों के
ामान ही होते हैं पर व्यापार बुद्धि से रोजगार के
ूप में ईश्वर की खाल ओढ़ लेते हैं। कितने ही
ोग ईश्वर के नाम के बहाने ही अपने जीविका
लाते हैं, हमारे देश में करीब ५६ लाख आदमी
से हैं जिनकी कमाई पेशा, रोजगार ईश्वर के नाम
र है। यदि वे यह प्रकट करें कि हम ईश्वर को
हीं मानते तो उसी दिन उनकी ऐश आराम देने
ाली, बिना परिश्रम की कमाई हाथ से चली
ायगी। इस लिए उन्हें ईश्वर को उसी प्रकार ओढ़े
हना पड़ता है जैसे जाड़े के बचने के लिए, गर्मी
ेने वाले कम्बल को ओढ़े रहते हैं जैसे ही वह
ज़रूरत पूरी हुई वैसे ही कम्बल को एक कोने में
टक देते हैं। यह तिजारती लोग जनता के समक्ष
अपनी ईश्वर भक्ति का बड़ा भारी घटाटोप बाँधते
ैं क्यों कि जितना बड़ा घटाटोप बांध सकेंगे उतनी
ी अधिक कमाई होगी। तिजारती उद्देश्य पूरा होते
ी वे अपने असली रूप में आ जाते हैं। पापों से
ुलकर खेलते हुए एकान्त में उन्हें जरा भी झिझक
हीं होती।

एक तीसरी किस्म के नास्तिक और हैं। वे
्रत्यक्ष रूप से ईश्वर के नाम पर रोजी नहीं चलाते
बल्कि उलटा उसके नाम पर कुछ खर्च करते हैं।
ईश्वर का आडम्बर उनके द्वारा आये दिन रचा
जाता रहता है। शरीर पर ईश्वर भक्ति के चिन्ह
धारण किये रहते हैं, घर में ईश्वर के प्रतीक मौजूद
होते हैं, ईश्वर के निमित्त कहे जाने वाले कर्मकण्डों
का आयोजन होता रहता है। ईश्वर भक्त कहलाने
वालों का स्वागत सत्कार, भेंट पूजा होती रहती
है। यह सब इसलिए होता है कि लोग उनके
संबंध में अच्छे ख्याल रखें, उनका आदर करें,
उन्हें धर्मात्मा समझें, उनके जीवन भर के कुकर्मों
की कलई न खोलें और आज भी जो उनके दुष्कर्म
चल रहे हैं वे छिपे रहें।

चौथे प्रकार के नास्तिक ये हैं जो पाप छिपाने
या धन कमाने के लिए नहीं किन्तु अपने को पुज-
वाने के लिए, यश और श्रद्धा प्राप्त करने के लिए
ईश्वर भक्त बनते हैं, इसके लिए कुछ त्याग और
कष्ट भी उठाते हैं पर भीतर से उन्हें प्रभु की सर्व
व्यापकता पर आस्था नहीं होती। कुछ लोग
रिश्वत के रूप में ईश्वर भक्ति की साधते हैं, अमुक
भोग ऐश्वर्य की लालसा उन्हें उसी मार्ग पर ले जाती
है जिस प्रकार आज कल घूंस खोर हाकिमों को
एक मोटी रकम झुका कर लोग मनमाना काम
करवा लेते हैं और थैली खर्च करके थैला भरने में
सफल हो जाते हैं। कुछ लोग तथाकथित ऋद्धि
सिद्धियों और न जाने किन किन अप्रत्यक्ष वैभवों
के मनसुवे बांध कर उसे प्राप्त करने की फिकर में
ईश्वर के दरवाजे खटखटाते रहते हैं।

इस प्रकार प्रत्यक्षतः ईश्वर भक्त दिखाई देने
वालों में भी असंख्यों मनुष्य ऐसे हैं जिनकी भीतरी
मनोभूमि परमात्मा से कोसों दूर है। उनका निजी
जीवन, घरेलू आचरण, व्यक्तिगत व्यवहार ऐसा
नहीं होता जिससे यह प्रतीत हो कि यह ईश्वर को
हाजिर नाजिर समझ कर अपने को बुराइयों से
बचाते हैं। ऐसे लोगों को किस प्रकार आस्तिक
कहा जाय? जो पापों में जितना ही अधिक लिप्त है

जिसका व्यक्तिगत जीवन जितना ही दूषित है वह उतना ही बड़ा नास्तिक है। लोगों को धोखा देकर अपना स्वार्थ साधना, छल, प्रपंच, माया, दंभ, भय, अत्याचार, कपट और धूर्तता से दूसरों के अधिकारों को अपहरण कर स्वयं सम्पन्न बनना नास्तिकता का स्पष्ट प्रमाण है। जो पाप करने का दुस्साहस करता है वह आस्तिक नहीं हो सकता, भले ही वह आस्तिकता का कितना ही बड़ा प्रदर्शन क्यों न करता हो।

ईश्वर भक्ति का जितनाही अंश जिसमें होगा वह उतने ही दृढ़ विश्वास के साथ ईश्वर की सर्व व्यापकता पर विश्वास करेगा, सबमें प्रभु को समाया हुआ देखेगा। आस्तिकता की दृष्टिकोण बनते ही मनुष्य भीतर और बाहर से निष्पाप होने लगता है। अपने प्रियतम को घट घट में बैठा देख कर वह सबसे नम्रता का मधुरता का, स्नेह का, आदर का, सेवा का, सरलता, शुद्धता और निष्कपटता से भरा हुआ व्यवहार करता है। भक्त अपने भगवान् के लिए व्रत, उपवास, तप, तीर्थ यात्रा आदि द्वारा स्वयं कष्ट उठाता है और अपने प्राणवल्लभ के लिए नैवेद्य, अक्षत, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, भोग प्रसाद आदि कुछ न कुछ अर्पित करता ही करता है। "स्वयं कष्ट सहकर भगवान को कुछ समर्पण करना" पूजा की सम्पूर्ण विधि व्यवस्थाओं का यही तथ्य है। भगवान को घट घट वासी मानने वाले भक्त अपनी पूजा विधि का इसी आधार पर अपने व्यवहारिक जीवन में उतारते हैं। वे अपने स्वार्थों को उतनी परवा नहीं करते, खुद कुछ कष्ट भी उठाना पड़े तो उठाते हैं पर जनता जनार्दन को, नरनारायण को अधिक सुखी बनाने में वे दत्त चित्त रहते हैं लोक सेवा का, व्रत लेकर वे घटघट वासी परमात्मा की व्यावहारिक रूप से पूजा करते हैं। ऐसे भक्तों का जीवन-व्यवहार बड़ा निर्मल, पवित्र, मधुर और उदार होता हैं। आस्तिकता का यही तो प्रत्यक्ष लक्षण है।

पूजा के समस्त कर्मकाण्ड इसलिए हैं कि मनुष्य परमात्मा को स्मरण रखे, उसके अस्तित्व को अपने चारों ओर देखे और मनुष्योचित कर्म करे। पूजा, अर्चना, वन्दना, कथा, कीर्तन, व्रत, उपवास, तीर्थ आदि सबका प्रयोजन मनुष्य की इस चेतना को जाग्रत करना है कि परमात्मा की निकटता का स्मरण रहे और ईश्वर के प्रेम एवं श्रद्धा द्वारा लोक सेवा का व्रत रखे और ईश्वर के क्रोध से डर कर पापों से बचे। जिस पूजा उपासना से यह उद्देश्य सिद्ध न होता हो, वह व्यर्थ है। जिस उपाय से भी "पाप से बचने और पुण्य में प्रवृत होने" का भाव जाग उठें वह उपाय ईश्वर भक्ति की साधना ही है।

पाठको! ईश्वर की खालमत ओढ़ो? सच्चे ईश्वर भक्त बनो। भक्ति को मंदिरों की धरोहर मत बनाओ, उसे व्यवहारिक जीवन में उतार लो। वाचक ज्ञानी मत बनो, कर्मनिष्ठा सीखो। ईश्वर के थन लाठियों से मत छुओ उसे अपने में ओत प्रोत करलो। विडम्बना को छोड़ो, परमात्मा के चरणों से लिपट जाओ उसे अपने अन्तःकरण के भीतरी कोने में बिठालो। अपनी दृष्टि को परमात्म मय बनालो। तुम्हारा जीवन-सच्चे आस्तिक का पवित्र जीवन होना चाहिए। अपवित्र जीवन तो प्रत्यक्ष नास्तिकता है।

———

उत्तम उत्तम संस्थाओं की इतनी आवश्यकता नहीं, विस्तृत धन और स्वर्ण-राशियों की आवश्यकता नहीं, असीम पौरुष और बलवान् लेखनं की आवश्यकता नहीं बल्कि आवश्यकता है एव मनुष्यता परिपूर्ण मनुष्य की।

महादेव गोविन्द रानाडे।

× × ×

सत्य धर्म का मतलब ईश्वर शब्द पर विश्वास की अपेक्षा भलाई पर विश्वास करना है।

स्वामी रामतीर्थ।

दान ही बुद्धिमानी है।

इस विश्व की समस्त गति विधि-'दान' के सतोगुणी नियम के आधार पर चल रही है। जो कोई भी तत्व अपनी-देने की प्रकृया को बन्द कर देता है वही नष्ट होजाता है, विकृत और कुरूप बन जाता है। यदि कुए पानी देना बन्द करदें, खेत अन्न देना बन्द करदें, पेड़ फल देना बन्द करदें हवा अपने अविश्रान्त सेवा कार्य को बन्द करदे तो सृष्टि का संचालन ही बन्द समझिये। माता पिता बालक के लिए आत्म दान करना बन्द करदें तो चेतन जीवों का बीज ही मिट जायगा।

भगवान हमें खुले हाथों सब कुछ बिना मूल्य मुक्त दान स्वरूप दे रहे हैं। जैसा शरीर हमें मिला हुआ है वैसा यंत्र कोई वैज्ञानिक १०० खरब रुपये को भी बनाकर नहीं दे सकता। जितनी आनन्दमयी परिस्थितियां परमात्मा ने हमारे चारों ओर जुटादी हैं-उपहार स्वरूप भेज दी हैं, क्या हम उसकी कीमत चुका सकते हैं? दानी परमात्मा हर घड़ी हमें कुछ न कुछ देता रहता है, उसकी रचना में दान तत्व मुख्य है।

मनुष्य जीवन की सार्थकता. शोभा और प्रसन्नता उसकी दान शीलता के ऊपर निर्भर है। जो जितना ही अधिक देता है वह उतना ही अधिक धनी बनता है। कोई भी विद्यादान करने वाला अध्यापक ऐसा नहीं है जिसकी विद्या दूसरों के देने के कारण घट गई हो। कोई भी धनवान ऐसा नहीं है जिसका दानी होने के कारण दिवाला निकला हो, स्त्री अपने पति को सर्वस्व देती है, इस दान के कारण उसका घटता कुछ नहीं उलटे बहुत कुछ मिल जाता है। भगवान को आत्म समर्पण करने वाला भक्त अपने आत्म दान द्वारा भगवान को खरीद लेता है।

दान क्या है? कल के लिए ईश्वर की बैंक में जमा की हुई पूँजी ही दान है,जो चक्रवृद्धि व्याज से बढ़ती रहती है और आड़े वक्त में काम आती है। दान करते समय हमारे मन में यश प्राप्त की इच्छा फलाशा, या अहंकार की भावना न होनी चाहिए। बालक खिलौनों से खेलते हैं। क्या इसके बदले में वे कुछ चाहते हैं? नहीं! खेल का आनन्द स्वतः ही एक पुरस्कार है और बालक उसीसे पूर्ण तया संतुष्ट हो जाते हैं। दान करना स्वयं एक आनन्द है, देते समय जो सन्तोष की उच्च सात्विक तृप्ति अन्तःकरण में उठती है वह इतनी महान् है कि कोई भी भौतिक सुख उसकी तुलना नहीं कर सकता।

कृपण और कंगाल में कोई भेद नहीं। कंजूस आदमी जिसका दान के अवसर प्राण सूखता है, सचमुच इस सृष्टि का बड़ा अभागा प्राणी है। पूर्व संचित पुण्य पूंजी के समाप्त होते ही उसकी कंगाली प्रकट हो जाती है। पैसे की सर्प की तरह चौकीदारी करने वाला मनुष्य दान के स्वर्गीय आत्म सुख का रसास्वादन करने से वंचित रहता है। इसके विपरीत जो देता है वह सच्चा अमीर है, पैसा न होने पर भी वह सुसम्पन्न व्यक्तियों को मिलने वाले सभी वैभवों का सुख उसे अनायास ही मिल जाता है। जो देता है वह अपने आपको बचाता है किन्तु जो प्रकृति के प्रवाह को रोकता है, देने से इनकार करता है, वह अपने आपको नष्ट कर लेता है।

संकीर्णता छोड़ दीजिए, आपके पिताके खजाने में बहुत भरा हुआ है। वह आपके लिए किसी वस्तु की कमी न पड़ने देगा। सांस को हम पेट से निकालते हैं,क्षण भर बाद ही नई ताजी स्वच्छ हवा सांस लेने के लिए प्राप्त हो जाती है। यदि आप दूसरों को देंगे तो परमात्मा आपको और देगा, परन्तु यदि कंजूसी करेंगे तो आपको मिलना भी बन्द हो जायगा। जो उदार है, दानी है, सत्कर्मों में अपनी सामर्थ्य भर देता है वास्तव में वहीं बुद्धिमान है और बुद्धिमानों का ही भविष्य उज्वल होता है। ——

चार आवश्यकीय प्रार्थनाएें।

(१) इस अंक के साथ अधिकांश पाठकों का चंदा समाप्त हो जाता है। सन् ४६ का चंदा मनीआर्डर से भेजने की प्रार्थना है।

(२) पेपर कन्ट्रौल की सरकारी आज्ञाओं के अनुसार आजकल हमें उतना ही कागज प्राप्त होता है जितने कि ग्राहक हैं। इसलिए अपना चंदा दिसम्बर में ही भेज देना चाहिए ताकि जनवरी का 'मनोविज्ञान अंक' भेजा जा सके। गत वर्ष जिनका चंदा देर से आया था वे विशेषाङ्क से वंचित रह गये थे। इस बारभी जो सज्जन देर से चंदा भेजेंगे, वे गतवर्ष की भांति जनवरी के महत्व पूर्ण अंक से वंचित रह सकते हैं।

(३) वर्ष के बीच के महीनों से चन्दे का हिसाब रखने में हमें बहुत कठिनाई होती है। इसलिए जिन महानुभावों का हिसाब वर्ष के बीच में किसी महीने से होता है। उनसे अनुरोध पूर्वक प्रार्थना है कि सन् ४६ के शेष महीनों का चन्दा भेजदें। जनवरी से पूरे वर्ष का हिसाब रखने में ही सुविधा रहती है।

(४) मनीआर्डर कूपन पर अपना ग्राहक नम्बर और पूरा पता साफ अक्षरों में अवश्य लिखना चाहिए। जो नये ग्राहक हों उन्हें 'नये ग्राहक' शब्द अवश्य लिख देना चाहिए। साधारण लिफाफे में नोट आदि भूल कर भी न भेजने चाहिए। क्यों कि ऐसे लिफाफे रास्ते में ही गुम हो जाते हैं।

———

संसार मिथ्या नहीं है।

(ले०—श्री० स्वामी सत्यदेव जी परिव्राजक)

———

जिस समय एक मनुष्य यह सोचने लगता है कि-" यह संसार मिथ्या है, कोई वस्तु स्थायी नहीं, मुझे मर जाना है, जीवन एक स्वप्न मात्र है "—उस समय उसको अपने जीवन में कोई दिलचस्वी नहीं रहती। वह उदासीन हो जाता है। संसार की जिम्मेदारियां उसको बोझ सम मालूम होती हैं। न उसका घर वालों से प्रेम, न उसको जाति का कुछ ख्याल। उसका देश चाहे रसातल में चला जाय, वह कुछ परवाह नहीं करता। उसे चाहे कोई गालियां दे, चाहे मारे पीटे उसके लिये सब बराबर है। अपने देश बन्धुओं का दुख उसके लिये कल्पना मात्र है। देश-हितैषिता क्या वस्तु है? यह बात उसके दिमाग में भी नहीं घुस सकती। उसकी जन्म-भूमि का धन चाहे कहीं का कहीं चला जाय, उसके करोड़ों भाई चाहे भूखे मर जांय, उसको इसका कुछ दुख नहीं होता।

स्मरण रखिये, यह वह विष है कि जिसके खाने से मनुष्य का मनुष्यत्व जाता रहता है। धैर्य, क्षमा, वीरता, साहस, सत्य आदि दैविक गुण कभी भी विकाश को प्राप्ति नहीं हो सकते, जब तक कि मनुष्य इस विषको अपने शरीर से न निकाल दे। उस व्यक्ति के सिर पर कोई जिम्मेदारी नहीं रहती, जो बोझ उठाने से घबराता है। उसके अंग प्रत्यंग कैसे बढ़ सकते हैं? वह अवश्य ही भीरु हो जायगा, विरोधों का सामना करने की शक्ति जाती रहेगी। वह मिलकर काम नहीं कर सकेगा। संघ (Organization) से उसे घृणा होगी। ऐसी दशा में ये दैविक गुण भी उसके लिए निकम्मे हो जाते हैं और वह मनुष्य शरीर रखता हुआ भी पशुवत हो जाता है।

———

साधना का मार्ग।

(ले०—श्री० डा० चतुर्भुज सहाय जी, एटा)

१—प्रत्येक अभ्यासी के लिए यह बहुत लाजमी है कि वह साधना पर पूर्ण श्रद्धा और विश्वास रखें। अभ्यास को बिना नागा, नित्य प्रति ठीक समय पर करते जाना चाहिए। एक दिन के लिए भी छूटने पर अभ्यासी कुछ न कुछ अपने स्थान से (जहां तक वह चढ़ाई कर ले गया था) नीचे खिसक आता है और लगातार कुछ दिवस न करने पर तो कोरा रह जाता है।

२—पूजा या अध्यात्मिक किसी कर्म के लिये पवित्रताई और शुद्धताई की भी बहुत जरूरत है। वस्त्र-स्थान-शरीर-मन सभी पवित्र होने चाहिये। पूजा का स्थान शुद्ध और शान्तिमय हो और उसको किसी दूसरे काम में नहीं लाना चाहिये। अभ्यास या तो निर्जन जंगल में जाके करे या घर में एक कोठरी इसी काम के लिये रख छोड़े, उसमें अधिक सजावट भी न करे।

३—पूजा अकेले भी की जा सकती है पर सामूहिक रूप में करने से उसका फल शीघ्र ही प्राप्त होता है। ऐसे स्थानों पर देवगण आ जाते हैं और सबको सहायता पहुंचाते हैं। कुछ लोगों का तो यहां तक ख्याल है कि मनुष्य की भक्ति की खबर यही देवगण ईश्वर तक पहुँचाते हैं और ईश्वर का आशीर्वाद इस भूलोक में लाकर देते हैं। पुराणों में लिखी हुई नारदादि ऋषियों की गाथाएँ इसी बात की सूचक हैं। ईसाई और मुसलमान भी इस सिद्धान्त को मानते हैं। कुरान में लिखा है कि जहां सब लोग मिल के इबादत (भजन) करते हैं फरिश्ते (देवता) वहाँ अपनी रहमत बरसाते हैं और खुदा से जाके अर्ज करते हैं कि फलां गिरोह (समूह) मुहब्बत (प्रेम) के साथ आपको याद कर रहा है।

४—इस सामूहिक पूजा का नाम ही 'सतसंग' है। सतसंग की महिमा सबने गाई है उसका कारण उपरोक्त कारण ही है।

५—आज कल कुछ दिन से लोगों के अन्दर यह ख्याल बहुत मजबूत हो गया है कि सन्ध्या-पूजन-भजन इत्यादि व्यक्तिगत अर्थात् अलग-अलग एकान्त ही में करना चाहिये परन्तु अनुभव ने यह बताया है कि जितने अधिक मनुष्य सामूहिक रूप से किसी साधन या भजन को करें तो उसका फल एक व्यक्ति की क्रिया से दुगना-चौगुना नहीं बल्कि बहुत अधिक होगा। कई लोगों के एक साथ बैठने से एक की त्रुटि दूसरे से पूरी होती रहती है और यह पूजकों का समूह ईश्वरीय आशीर्वाद उतारने के लिये संगठित बलवान यंत्र बन जाता है।

६—पूजा या भजन के समय श्रद्धा उच्चभावना और दृढ़ निश्चय होना बहुत लाजिमी है। भाव ही फल मिलता है। जहाँ भाव नहीं भावना नहीं।

७—सत्संग के समय नग्न-खुले-उघारे नहीं बैठना चाहिये पांव पसार के या टेढ़े-मेढ़े भी नहीं बैठना चाहिये। जहां तक हो सरकिल बना के बैठना उचित पड़ता है, ताकि प्रवाहित विद्युतधारा का असर सब पर एक समान पहुंचे और सब मिलके अनेक से एक बन जांय।

८—कई लोग आशा और मनोरथ लेके भजन में बैठते हैं इससे पूजा या भजन की शक्ति उसी ओर चली जाती है और साधक मुख्य वस्तु को नहीं प्राप्त हो सकता।

९—जिस समय मनुष्य विधि सहित साधन में जो पूर्ण और अनुभवी गुरू द्वारा उसे मालूम हुआ हो लगता है तो एक दम उसका सम्बन्ध उस आदि सूर्य्य जगदीश्वर से हो जाता है और उसकी ओर से तुरन्त ही एक बहुत मोटी किरण प्रकाश की आन कर भजन करने वाले के ऊपर गिरने लगती है

और उसका प्रकाश उसके हृदय मस्तिष्क इत्यादि रोम रोम में फैल जाता है।

१०—अनुभवी पुरुषों ने ऐसी स्थूल किरन का प्रकाश स्वेत सुनहरी वर्ण लिये हुये बताया है पर किसी किसी अभ्यासी को दूसरे रंगों में भासती दिखाई देती है यह किरन चाहे दिन हो चाहे रात्रि हो हर समय मिल सकती है और अगर हम किवाड़ बन्द करके अन्दर बैठे हों तो वहां भी दीवार में घुस के वहाँ पहुंच जाती है।

११—लोगों को तरह-तरह के रंग विरंगे प्रकाश क्यों दिखाई देते हैं। इसका कारण है प्रथम यह श्वेत किरण अन्तरात्मा में प्रवेश करती है फिर वहां टकराके बाहिर आती है और हमारे अंतष्करण से पास होती है। बस उसी समय उसमें अनेक रङ्ग भासने लगते हैं। हमारे अंदर जिस तत्व के परिमाणु अधिक होंगे वही रङ्ग स्पष्ट होगा। जैसे त्रिकोण शीशे के टुकड़े में सूर्य्य की किरण अनेक रंगों वाली हो जाती है।

१२—साइंस यह बतलाती है कि जब प्रकाश किसी बिंदु से निकल के आगे बढ़ता है तो वह गोल होता जाता है और अर्ध गोलाकार शकल में वह ठहर जाता है परन्तु यहां उसका उल्टा होता है जो लोग साधन या भजन करते हैं उनमें से तेज पुञ्ज जिसको अँग्रेजी में औरा aura कहते हैं—निकल कर बिंदु की शकल अखत्यार कर लेता है और यह बिन्दु चाहे किसी रंगत के हों साधक के आगे ही चला करते हैं पीछे की ओर नहीं जाते। आगे बढ़ के यह सब, बिन्दु आपस में मिलते जाते हैं और ठोस किरण के आकार में आते जाते हैं। फिर उन सबका अति तेजोमयी 'प्रकाश बिन्दु' बन जाता है।

१३—यह बिन्दु बिलकुल जड़ ही नहीं होते उनमें चेतनता होती है। इसका सुबूत यह है कि यदि कोई चैतन्य शरीर मनुष्य या दूसरी योनि का उनके रास्ते के समीप होता है तो यह अपना स्थान त्याग के उसकी ओर मुड़ पड़ते हैं और उसके हृदय और मस्तिष्क को स्पर्श करने लगते हैं और अपने प्रभाव से थोड़ी देर के लिये उसको भी प्रज्वलित कर देते हैं फिर बाहिर आके अपने काम में लग जाते हैं इस प्रकार एक साधक अनेकों मनुष्यों को अपनी किरण द्वारा प्रकाश देने और अपने प्रभाव में लाने का अनायास ही उद्योग करता रहता है और यह एक बड़ा उपकार है।

१४—पश्चिमी साइन्सदांनों ने इस तेजपुंज (aura) के लिये जो लिखा है वह यह है कि यह साधारण मनुष्य में १८ इंच चारों ओर रहता है यानी केवल डेढ़ फुट। और विकसित अर्थात् जिसने आत्म उन्नति करली हो ऐसे मनुष्य में ५० गज अर्थात् १५० फीट तक वह फैला रहता है, और उसमें बहुत शक्ति होती है। तात्पर्य यह है कि अध्यात्मिक विकास के साथ यह तेज पुंज (aura) भी बढ़ता रहता है और यही कारण है कि संत-महात्माओं के स्थानों में पहुँच के मनुष्य अपने को बदला हुआ पाता है उनके तेज पुंज के प्रभाव में आकर अपनी तपन थोड़ी देर को त्याग देता है और शांति की गोद में खेलने लगता है।

१५—साधारण मनुष्य अपने तेज पुंज से कोई काम नहीं ले सकता मगर विकसित मनुष्य उस पर अधिकार रखता है। उसे वह अपना संकल्प शक्ति (will) के साथ सैकड़ों मील दूर भेज सकता है और अपना प्रभाव फैला सकता है। साधारण पुरुष का प्रयोग ३० या ४० गज से अधिक नहीं चलता मगर साधक उसे दूर देशों में भी ले जा सकते हैं।

जब बहुत से मनुष्य मिल कर पूर्ण भाव के साथ एक स्वर होकर उसको पुकारते हैं, उसका गुणगान करते हैं या उसका चिन्तन (ध्यान) करते हैं तो एक बहुत मोटी किरन ऊपर से उतरती है अकेले मनुष्य पर उतरने वाली किरन का व्यास इतना नहीं होता। एक साथ मिल के साधन करने में

आकर्षण बढ़ जाता है और सबके तेजबिन्दु (aura) मिल के वहाँ छा जाते हैं और अपने भँडार से प्रकाश खींचने लगते हैं । इसीलिये सतसंग की विशेषता है ।

१६—चूंकि यहां (aura) या तेज पुंज का वर्णन हम कर रहे हैं इसलिये एक बात हम और बतलाते हैं इस बात को शायद अभी तक तुमने न समझा हो। संसार में जितने मत हैं उन सब के पूजा गृह या मंदिर, भिन्न—भिन्न प्रकार के पाये जाते हैं। शैवों के मन्दिर दूसरी तरह के, वैष्णवों के दूसरी तरह के जैनी बौद्ध, ईसाई-पारसी-मुसलमान-यहूदी सबके मन्दिरों की बनावट में फ़र्क होता है। यह बात यों ही नहीं हैं इन मजहबों के प्रचारकों का अनुभव इसमें शामिल है और उसी की आकृति बाहिर स्थूल में उन लोगों ने बनवाई थी कि जो रस्म के तौर पर अबतक चली आती है।

मनुष्य जब पूजा या आराधना करने बैठता है तो उसके चारों ओर अन्तरिक्ष (eather) में एक सूक्ष्म इमारत बन जाती है वह किसी साधन में गुम्बददार होती है किसी साधन में दूसरे प्रकार की। प्रत्येक मत के कर्म में भेद रहता है, रस्म रिवाज भी दूसरी रहती है. इसलिए उनके यह (Astrel building) आस्ट्रल बिल्डिङ्ग सूक्ष्मगृह में भी फर्क हो जाता है और उसी के फोटू पर बाहिर यह सब बनाये गये हैं।

१७—ऊपर से जब प्रकाश की धार गिरती है तो अभ्यासी को कभी—कभी ब्रह्म रन्ध्र से शरीर में उतरते हुए अनुभव होती है, कभी हृदय के स्थान पर से घुसती मालूम देती है. कभी लगातार मूसलाधार आती है, कभी आती है फिर बन्द हो जाती है, फिर आने लगती है, यानी रुक-रुक कर आती है। धारा प्रवाह उसका नहीं रहता और कभी इतनी सूक्ष्म आती है कि उसको हम महसूस ही नहीं कर पाते, पर फायदा देखते हैं।

१८—संतों ने व अनुभवी पुरुषों ने पहिली तरह के प्रकाश को निकृष्ट, दूसरे प्रकार के प्रकाश को मध्यम, और तीसरे सबसे सूक्ष्म को उत्तम श्रेणी का माना है। इसका लाभ ठहराऊ होता है और शरीर व अंतःकरण के परिमाणु सब उससे भर जाते हैं और दूसरे व पहिले में यह बात नहीं होती। वह वर्षा के जल की तरह वह कर चला जाता है।

१९—इस बात की बहुत ज़रूरत है कि भजन या पूजा के समय हमारी वृत्ति अन्तरमुखी रहे। इष्ट का ध्यान अन्तर में ही हो। बाहिरी ध्यान से वृति बाहिर मुखी रहती है, उससे काम पूरा नहीं बन पाता। न तो पूर्ण शक्ति आती है और न आत्म साक्षात्कार होता है।

पाप छिपता नहीं।

(ले०—सुश्री कैलाश वर्मा बी० ए०, तृतीय वर्ष)

चाहे आप किसी अत्यन्त एकान्त गुफा में कोई पाप कर्म, असुन्दर कृत्य, घृणास्पद कर्म कर लो, रात्रि के अंधकार में उसे छिपाने का प्रयत्न करो. किन्तु विश्वास रक्खो पाप स्वयं पुकार पुकार कर अपना ढोल पीटता है। आप बिना किसी विलम्ब के यह देख कर चकित होंगे कि आपके पैरों के नीचे की घास खड़ी होकर आपके विरुद्ध साक्षी देती है। आपके इर्द गिर्द खड़े हुए वृक्षों को भी जुबान खुल जाती है। उनके पत्ते पत्ते उद्बोधन कर उठते हैं—"आप प्रकृति को-इस कुदरत को—धोका नहीं दे सकते।"

प्रकृति के, परमेश्वर के, उस आदि नियन्ता के पाप कर्म देखकर सज़ा देने के लिए सहस्रों नेत्र हैं, सहस्रों कान हैं और अनगिनत हाथ हैं। वह दि रात चौबीसों घन्टे आपकी विभिन्न लीलाएँ, मुद्राएँ निहारा करता है। प्रत्येक पाप कर्म का किसी न किसी रूप में, किसी न किसी समय अवश्य प्रतिकार मिलता है। इसमें किसीकी रुठिरिआयत नहीं होती। यह एक दैवी विधान है।

इस पृथ्वी पर ही स्वर्ग बनेगा

(योगी अरविन्द घोष)

जो अशुभ है उससे मुक्त होकर, उसके संसर्ग से अपनी आत्मा को पवित्र बनाकर हमें उसकी विद्युत् शक्ति से परिचालित होकर इस संसार में प्रकाश फैलाने के लिये, उसके ज्योति की किरणों को संसार में बांटने के लिये आधार मंत्र (ॐ नमो) का काम करना होगा । जिस प्रकार एक ही सुरङ्ग पूर्ण शक्ति युक्त होकर घोर रव के साथ पर्वत माला को विदीर्ण कर देता है, उसी प्रकार ईश्वर की ज्योति से सम्पन्न हमें संसार की सभी अशुद्धताओं और कुसंस्कारों को दूर करना होगा । इस तरह एक एक मनुष्य साधना में सिद्ध होकर सैकड़ों और हजारों प्राणियों के बीच ज्ञान व शक्ति की ज्योति फैलाकर उनमें से अविद्या को दूर करेगा और उनका उद्धार करेगा। एक साधक की शक्ति के प्रभाव से सहस्रोंजन भागवत धर्म में दीक्षित होंगे और सच्चिदानन्द के अगाध सागर में निमग्न होंगे।

मानव समाज के उद्धार का केवल एक ही मार्ग, एक ही उपाय और एक ही पन्थ है, जिसकी वह आज तक उपेक्षा करता आया है। उस मार्ग का नाम है शक्ति साधना और आत्मोपलब्धि ।

प्रकृति का ज्ञान अवगम्य करके भी यदि प्रकृति की सहायता से आत्मा की मुक्ति नहीं हो पाती तो निश्चय जानिये कि उस मार्ग से जीवन की सफलता नहीं प्राप्त हो सकती । इसके लिये हमें पुनः उसी मार्ग का अनुसरण करना होगा, उसी पथ पर लौटाना होगा, जहां से हमें ईसा की पवित्रता व पूर्णता, मुहम्मद का आत्म विश्वास और आत्म समर्पण, श्री चैतन्यदेव का प्रेम व आनन्द, परमहंस रामकृष्ण का संसार के सभी धर्मों का समन्वय तथा एकीकरण, व अति मानव तत्व की प्राप्ति होगी।

इन सब भावों को एकत्र करके एक प्रबल स्रोत बहाना होगा। पतित पावनी, सकल मलहारिणी, पवित्र सलिला भागीरथी गङ्गा की भांति नाशवान इस संसार तथा अर्धमृत इस मानव जाति के बीच में इसे प्रवाहित कर देना होगा। जिस प्रकार राजा भागीरथ विष्णुपाद-स्पर्श पवित्रा इस गंगा के स्पर्श से अपने पितरों को मुक्त कराकर अनन्त धाम में पहुँचा सके, उसी प्रकार हमभी इस नवीन धर्म के पवित्र स्रोत को मानव जाति के बीच में प्रवाहित करके, उनकी आत्म शुद्धि करके, उनकी आत्मा का उद्बोधन करावेंगे । निश्चय मानो कि इस पृथ्वी पर एक बार पुनः स्वराज्य की स्थापना होगी ।

पर इतने से ही लीला का यह उद्देश्य नहीं सिद्ध हो सकता है। इसी लीला के लिये ही भगवान प्रत्येक युग में अवतार ग्रहण करते हैं। वह लीला क्या है ? मानव जाति को दिन प्रति दिन शनैः शनैः उन्नति के पथ पर अग्रसर करना, एक उन्नत पथ से दूसरे उन्नत पथ पर पहुंचाना, समुच्चय की दैवी शक्ति तथा तूरीय के विपुल आनन्द द्वारा मनुष्य को देवता की भांति बनाना ही इस लीला का उद्देश्य है । भगवान अनन्त युग से विविध प्रकार के रूप धारण करके इस प्रकार की लीला करते आ रहे हैं । मावन संसार के बीच में उनकी इस प्रकार की लीला सदा व सर्वदा अविच्छिन्न रूप से होती चली आ रही है । उन्होंने स्वर्ग को मर्त्य बना दिया है और इस पृथ्वी पर सहस्रों धारा द्वारा अमृत की वर्षा की है। जब तक पृथ्वी और स्वर्ग एक न हो जाय हमें शान्ति नहीं मिल सकती । जब तक इस उद्देश्य की सिद्धि न हो जाय हमारी साधना पूर्ण व चरितार्थ नहीं हो सकती।

आध्यात्मिक शान्ति के-कुछ अनुभव।

(प्रोफेसर श्री रामचरण महेन्द्र, मनः शास्त्र विशेषज्ञ)

आध्यात्मिक पथ पर अग्रसर होते हुए मुझे जो प्रत्यक्ष अनुभव हुए हैं उन्हीं के स्पष्टीकरण के हेतु यह विवेचन लिख रहा हूँ। आशा है उन्नति के पथ पर चलने वाले अन्य पथिकों को भी इससे कुछ लाभ होगा। मेरा स्वयं तो यह विश्वास है कि इन सूत्रों से प्रायः प्रत्येक व्यक्ति को ही थोड़ा बहुत लाभ अवश्यमेव होगा।

आप संसार के कांटे नहीं बीन सकते—कुछ वर्ष पूर्व मैं एक बोर्डिंग हाऊस का सुपरिनटेन्डेन्ट था। विद्यार्थियों का उचित निरीक्षण करना, उन्हें सन्मार्ग पर चलाना, प्रातःकाल शीघ्र उठने की आदत डालना, सिनेमा, सिगरेट, बकवास, समय की बरबादी रुपये की होली फूंकना—इत्यादि इत्यादि अनेक बातों से उनकी भरसक रक्षा करता। एक पिता की हैसियत से विद्यार्थी-समुदाय को प्रत्येक अनुचित कार्य से रोकता। मैंने कुछ मास पश्चात् देखा कि यद्यपि ७५ प्रतिशत लड़कों में उन्नति की महत्त्वाकांक्षाएं प्रदीप्त हुईं, कुछ ऐसे रह ही गए जो अनेक दुष्कर्मों में विरत रहे। इन कुमार्ग पर चलने वालों को ठीक पथ पर लाने के लिए मुझे अनेक यत्न करने पड़े। अन्ततः एक दो ही व्यक्ति ऐसे रहे जिन्हें कुमार्ग से न हटा सका।

प्रत्येक कुपथगामी को देख कर मेरे मन में पीड़ा होती। व्यग्रता और कभी कभी क्रोध भी आता। मैं स्वयं अपना सुधार कुछ भी न कर सका उलटा अशान्ति का दावानल अन्तःकरण में जलने लगा। आज मैंने सीखा है कि मनुष्य वास्तव में किसी दूसरे का सुधार नहीं कर सकता। न दूसरों की उन्नति का उत्तरदायित्व ही अपने ऊपर ले सकता है। उसे दूसरों का सुधार करने की धुन में न पड़ कर स्वयं अपना सुधार करना चाहिए। वास्तव में दुःख देने वाला कारण दूसरों के दुःखों, कष्टों, न्यूनताओं, कमजोरियों, छिद्रों को देखना ही है संसार में हजारों पुरुष ऐसे दुष्कर्मी हैं कि हम उनका सुधार नहीं कर सकते। उनकी कमजोरियों को हटाने के चक्र में, कहीं अपना पतन न कर लें, यह हमें स्मरण रखना चाहिए।

दूसरों पर दोषारोपण करके अपने को हम अँधेरे में ही रहने देते हैं। अपनी निर्बलताओं पर चादर ढक लेते हैं। अमुक व्यसन दूर हो जाय, अमुक व्यक्ति का अमुक दुर्गुण जाता रहे, फलाँ बुरी आदत छूट जाय, तम्बाकू, बीड़ी, शराब छूट जाय, ऐसी बातों को मन में बार बार आने देने से अशान्ति उत्पन्न होती है।

कोई भी क्षुद्र और निकृष्ट विचार मन आरूढ़ हो जाने पर पतन होता है। इसी प्रक मैंने स्वयं अनुभव किया है कि जो मनुष्य अपर संकल्प बार बार बदलता है वह वास्तव में कुछ नहीं कर पाता। मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूं कि दूसरों की सम्मति से अपना निश्चय नहीं बदलना चाहिए।

अपने से नीचे वालों को देखिए—हमसे ऊँची जगहों, पदों, स्थानों पर संसार में अनेक व्यक्ति हैं। प्रत्येक व्यक्ति यदि यही चाहने लगें कि हम सम्राट् बनें, बड़े धनी अमीर. उच्च पदाधिकारी बनें, हमें ढेर से रुपये मिलें, मोटर, आलीशान कोठी, सुन्दर आभूषण, सुन्दर प्रियतमा मिले—तो यह कहां संभव है।

प्रत्येक व्यक्ति उच्चाधिकारी नहीं बन सकता, प्रत्येक व्यक्ति आलीशान कोठी, मोटरकार, नौकर नहीं रख सकता, प्रत्येक सुन्दर वस्त्राभूषण से अपना शरीर अलंकृत नहीं कर सकता, प्रत्येक सुन्दर प्रियतमा नहीं पा सकता। आप जितना ही इन

चीजों को पाने की कामना करेंगे, उतने ही अशान्त, दुःखी रहेंगे।

आप कितने भाग्यशाली हैं—अपने से नीचे वालों को देखिए। उन्हें भर पेट भोजन भी नहीं मिलता, और आप कितने भाग्यशाली हैं कि दो समय इज्जत से भरपेट भोजन कर लेते हैं। कितने ही सड़कों पर पड़े ठिठुरे हुए रात्रि व्यतीत करते हैं, नंगे उघाड़े क्लान्त पड़े रहते हैं। और आप घर पर मजे में रात्रि व्यतीत करते हैं। आप कितने भाग्यशाली हैं।

शफ़ाखाने में जाकर देखिए। कितने रोगों के मरीज़ों का तांता बँधा है। कोई खौं खौं करके खाँस रहा है तो कोई हाय हाय करके कराह रहा है। किसी के नेत्रों में भयंकर रोग है तो कोई मूत्र रोग से विह्वल है। किसी का औपरेशन किया जा रहा है और रक्त, पीव, की धार बह रही है। आपके पास स्वस्थ शरीर है, हाथ पांव चलते हैं, खाना उचित समय पर पच जाता है, कब्ज, बवासीर, खांसी आपको नहीं है, आपका चेहरा मधुर मुसकान से हरा भरा है। सचमुच, आप कितने भाग्यशाली हैं।

जो कुछ आपके पास है, वह आवश्यकता से अधिक है। जो नहीं है, उसके बिना भी आपका कार्य भली भांति निर्विघ्न चल सकता है। जब हम अपने से अधिक दुःखी संतप्त दुनियां को देखते हैं, तो सचमुच हमें प्रतीत होता है, कि वास्तव में हम भी बड़े भाग्यशाली हैं।

दूसरों से कुछ प्राप्ति की आशा मत रखिए—

अशान्ति का मुख्य कारण यह है कि नित्यप्रति के व्यवहार में हम दूसरों से बहुत अधिक सहानुभूति प्रेम, प्राप्ति की उम्मीद रखते हैं। अमुक से हमने अमुक अवसर पर भलाई की थी, अब इस अवसर पर वह हमारी तरफदारी करेगा, लाभ पहुंचाएगा, कुछ अर्थ प्राप्ति करा देगा, हमारा विशेष ख्याल रक्खा करेगा—ये सब ऐसी थोथी आशाएँ हैं जो इस कठोर संसार में बहुत कम पूर्ण होती हैं। आप जिनसे उम्मीद बांधे रहते हैं, वे ही आपका पेट काटते हैं तकलीफें देते हैं, कन्नी काट लेते हैं, सहायता नहीं करते।

अतः आप दूसरों से कुछ भी प्राप्ति की उम्मीद न रखिए। आपकी कोई सहायता नहीं करेगा, आप स्वयं ही अपने लिए जो चाहें कर सकते हैं। यदि दूसरे आपके लिए कुछ कर दें—तो यह उनकी उदारता है। यदि उनसे प्राप्ति की आशा न रख कर आप उनकी सहानुभूति पायेंगे, तो वह आपको बहुत भारी मालूम होगी। आप तो यह मानिये कि हम स्वयं ही अपने लिए हैं, दूसरा कोई साथी नहीं है। दुनियां का लम्बा रास्ता हमें स्वयं ही तैय करना है।

आपका सबसे बड़ा सहायक—आपको अपना लाभ स्वयं सँभालना होगा। दुर्बलताओं को अपने हृदय से स्वयं बाहर फेंकना होगा। अपनी शक्तियों में श्रद्धा जागृत करनी होगी। जब आप दोषदर्शी स्वभाव से मुख मोड़ कर स्वयं अपनी दुर्बलताओं को दूर करने का प्रयत्न करेंगे, तभी भीतर से परिवर्तन प्रारम्भ होगा।

मनुष्य को अपनी दुर्बलताओं को दूर करने के लिए प्रति दिन उद्योग करना चाहिए। निरन्तर प्रयत्न, उद्योग, संतत अध्यवसाय से यह दूर हो सकेंगी।

बड़े सावधान रहें—जिस व्यक्ति को धन, संपदा, मान, बड़ाई और ऊँचे ऊँचे पदों की अतृप्त आकांक्षा नहीं विचलित करती किन्तु जो कुछ उसके पास है, उसी में वह संतुष्ट प्रसन्न रहता है और उसके छिन जाने पर भी शोक नहीं करता—वही वास्तव में सच्चा कर्म-मार्गी है। परन्तु जिसे लगातार "और मिले" और मान बड़ाई प्राप्त हो—ऐसी अतृप्ति लगी रहती है, जिसे जो कुछ उसके पास है, उस पर

धर्म को कसौटी पर चढ़ने-दीजिए !

(श्री० स्वामी विवेकानन्द जी)

बड़े बड़े धर्म वक्ता आपने देखे होंगे और उनके व्याख्यान सुने होंगे । सोचना चाहिये कि उनके शब्दों का अनुवाद उनका हृदय कहां तक करता है ? वे अपने अंत:करण के भावों को यदि स्पष्टतया प्रगट करने लगें तो आप निश्चय समझिये कि उनमें से अधिकांश लोगों को 'नास्तिक' कहना पड़ेगा, वे अपनी बुद्धि को चाहे जितनी भगतन बनावें, वह उनसे यही कहेगी कि " किसी पुस्तक में लिखा है या किसी महापुरुष ने कहा है इसलिये मैं उस पर बिना विचार किये विश्वास क्यों कर करूँ ? दूसरे भले ही अन्धश्रद्धा के आधीन हो जांय, मैं कभी फँसने वाली नहीं। " इधर जाते हैं तो खाई और उधर जाते हैं तो अथाह समुद्र है। यदि धर्मोपदेशक या धर्मग्रन्थों का कहना मानो तो विवेचक बुद्धि बाधा डालती है और न मानो तो लोग उपहास करते हैं। ऐसी अवस्था में लोग उदासीनता की शरण लेते हैं जिन्हें आप धार्मिक कहते हैं, उनमें से अधिकांश लोग उदासीन अथवा तटस्थ हैं और इसका कारण धर्म पर यथार्थ विचार न करना ही है, धर्म की उदासीनता यदि ऐसी ही बढ़ती जायगी और लोग धर्माचरण के लाभों से अनिभिज्ञ ही बने रहेंगे तो धर्म की पुरानी इमारत भौतिक शास्त्रों के एक ही अघात से हवाई किले की तरह नष्ट भ्रष्ट हो जायगी।

भौतिक शास्त्र जिस प्रकार विवेचक बुद्धि को भट्टी से निकाल कर अपनी सत्यता सिद्ध करते हैं उसी प्रकार धर्मशास्त्र को भी अपने सिद्धान्तों की सत्यता संसार के आगे सप्रमाण सिद्ध कर देना चाहिये। ऐसा करने पर बुद्धि के तीव्र ताप से यदि धर्मत्व गल पच भी जांयगे तो भी हमारी कोई हानि नहीं है। जिसे आज तक हम रत्न समझे हुए थे वह पत्थर निकला। उसके नष्ट होने का हमें दुःख क्या ? अन्ध परम्परा से उसे सिर पर लादे रहना ही मूर्खता है। मेरी समझ में ऐसे सन्दिग्ध पत्थर की जहां तक शीघ्र हो, परीक्षा कर व्यवस्था से लगा देना ही अच्छा है। यदि धर्मतत्व सत्य होंगे तो वे भट्टी में कभी न जलेंगे, उलटे वेही असत्य पदार्थ भस्म हो जांयगे जिनके मिश्रण से सत्य धर्म में सन्देह होने लगा है । आग में तपाने से सोना मलीन नहीं किन्तु अधिक उज्वल हो जाता है। विवेचक बुद्धि की भट्टी में सत्य धर्म को डालने से उसके नष्ट होने का कोई भय नहीं है किन्तु ऐसा करने से उसकी योग्यता और भी बढ़ जायगी तथा उसका उच्च स्थान सर्वदा बना रहेगा । पदार्थ विज्ञान और रसायन शास्त्रों की तरह धर्म शास्त्र भी प्रत्यक्ष प्रमाणों में सिद्ध करना चाहिये। यदि कर्मेन्द्रियों की अपेक्षा ज्ञानेन्द्रियों की योग्यता अधिक है तो जड़ भौतिक शास्त्रों पर ज्ञान प्रधान धर्मशास्त्र की विजय क्यों कर न होगी ?

संतोष नहीं है और जो दूसरे को हड़प जाने के लिए हाथों को खून से रंजित करता है-वही यथार्थ में मूर्ख और अज्ञानी है।

जिस साधक ने अपने स्वार्थ को तिलांजलि देकर मनको शुद्ध कर लिया है और जो यह समझता है कि मेरा कोई शत्रु नहीं है, जो ध्यानावस्थित हो, अपने भीतर सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को देखता है, वही ज्ञानी है।

जीवन में आगे बढ़ना चाहते हो तो दूसरों पर मत निर्भर रहो, स्वयं अपनी विशेषता प्रदर्शित करो। तुम्हें अपना बोझ स्वयं ही ग्रहण करना पड़ेगा। दूसरा कोई भी व्यक्ति इस कर्म क्षेत्र में तुम्हारा साझीदार नहीं बनेगा।

चिन्तन के रज कण।

(ले०—ठा० गुणवन्तसिंह जी, गूदर खेड़ा)

———

—दम्भी लोग दूसरे लोगों के लिये 'बावले जान' हो जाते हैं. दम्भी अपना तो गुण गान करता है और दूसरों के दोषों का वर्णन करता है। उसे अपने से छोटों के सम्मुख आनन्द आता है, जो उसके गुणों और कार्यों की प्रशंशा करते नहीं थकते। अन्त में दम्भी उन आदमियों का शिकार हो जाता है जो उसकी प्रशंशा करते हैं क्योंकि दम्भी की अपेक्षा और कोई खुशामद से प्रसन्न नहीं होता।

—स्पिनोजा।

—कंजूस अन्धा होता है क्योंकि वह सिवा सोने के और किसी सम्पत्ति को नहीं देखता। फिजूल खर्च व्यक्ति अन्धा होता है। क्योंकि वह प्रारम्भ को ही देखता है अन्त को नहीं। रिझाने वाली स्त्री अन्धी होती है क्यों कि वह अपनी झुर्रियां नहीं देखती। विद्वान् अन्धा होता है क्यों कि वह अपना अज्ञान नहीं देखता। ईमानदार अन्धा होता है क्यों कि वह चोर को नहीं देखता। चोर अन्धा होता है क्यों कि वह परमात्मा को नहीं देखता।

—विक्टर ह्यूगो।

—मनुष्य अपना सच्चा मूल्य नहीं कूत सकता क्यों कि उसे दैविक ज्ञान नहीं रहा है, इसलिये वह अपने विषय में औरों से पूछता फिरता है। यद्यपि वह अधिक विश्वस्त अपनी आत्मा से अपने विषय में दृढ़ता पूर्वक जानकारी कर सकता है। देवता तो सांसारिक दृश्य पर मोहित नहीं होता। वह निरन्तर अन्तर दृष्टि रखता है और उसकी आनन्दमयी मुस्कान का रहस्य आत्म प्रतीति है।

—महर्षि रमण।

—मैं तुम लोगों को घोर नास्तिक देखना पसन्द करूँगा। लेकिन कुसंस्कारों से भरे मूर्ख देखना न चाहूँगा। नास्तिकों में कुछ न कुछ जीवन तो होता है। उनके सुधार की तो कुछ आशा है 'वे मुर्दे तो, नहीं हैं। लेकिन मस्तिष्क कुसंस्कार में यदि घुस जाते हैं तो वह बिल्कुल बेकार हो जाता है। दिमाग बिल्कुल फिर जाता है। मृत्यु के कीड़े उसके शरीर में प्रवेश कर जाते हैं। तुम्हें इन दोनों को छोड़ना होगा। मैं साहसी 'निर्भीक' नौजवानों को चाहता हूं तुम लोगों में ताजा खून हो 'स्नायुओं' में तेजी हो 'पेशियां' लोहे की तरह सख्त हों। मस्तिष्क को बेकार और कमजोर बनाने वाले भावों की आवश्यकता नहीं, इन्हें छोड़ दो।

—स्वामी विवेकानन्द।

—सूअर के सौ पुत्र किस काम के कि भूखों मरें! पर धन्य है सिंहनी का एक पूत, जिसके बल पर वह झाड़ी में निर्द्वन्द्व होकर सोवे। मनुष्य संख्या बढ़ने से लाभ नहीं बल्कि आवश्यकता है 'पूर्ण मनुष्य की'।

—चाणक्य।

—उत्तम उत्तम संस्थाओं की इतनी आवश्यकता नहीं, विस्तृत धन और स्वर्ण राशियों की भी आवश्यकता नहीं, असीम पौरुष और बलवान लेखनी की आवश्यकता नहीं बल्कि आवश्यकता है एक मनुष्यता से परिपूर्ण मनुष्य की।

—जस्टिस महादेव गोविन्द रानाडे।

आपके स्थापित किये हुए श्वेत मन्दिर तथा पत्थर के स्थापित विष्णु आपके हृदय के पाप शान्त न करेंगे। पूजो देश के भूखे इन नारायणों को। इन परिश्रम करने वाले विष्णुओं को पूजो।

—स्वामी रामतीर्थ।

—किसी देश का बल छोटे विचार के बड़े आदमियों से नहीं किन्तु बड़े विचार के छोटे आदमियों से बढ़ता है। सत्य धर्म का मतलब ईश्वर शब्द पर विश्वास की अपेक्षा भलाई पर विश्वास करना है।

—स्वामी रामतीर्थ।

———

धन की अनावश्यक तृष्णा।

(ले०—डा० हीरालालजी गुप्त, बोगूमराय)

आज कल पैसे को अत्यधिक महत्व दिया जाने लगा है। जिसे देखिए वह पैसे के पीछे बेतहाशा दौड़ रहा है। भिक्षुक और धन कुबेर अशिक्षित और विद्वान सभी को पैसे की चाह एक समान है। वास्तविक आवश्यकता के कारण नहीं वरन् तृष्णा के कारण, यह लालसा उन्हें सताती है। धन प्राप्त करने के लिए लोग उचित और अनुचित हर एक तरीका अपनाने को तैयार रहते हैं। मधुमक्खी की तरह संचय और कंजूसी को अपनी जीवन नीति बनाकर पैसे की मृग तृष्णा में मारे मारे फिरते हुए लोगों को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि इस युग में, टका ही धर्म, कर्म और परमपद बन गया है।

यद्यपि जीवन निर्वाह के लिए एक नियत मर्यादा में पैसे की सब किसी को आवश्यकता है। एक नियत सीमा तक धन का उपार्जन और संचय करना भी चाहिए। पर उसका अति लोभ अनावश्यक है। सुर दुर्लभ मानव शरीर बड़े भाग्य से मिलता है इसका एक एक क्षण अमूल्य निधि के समान है। इसलिए समय का सदुपयोग, आत्मोन्नति, सेवा, परोपकार, स्वाध्याय, सत्संग ईश्वर आराधना, सरीखे सत्कर्मों में करना चाहिए।

जो लोग लालच के मारे हर घड़ी धन के लोभ में फंसे रहते हैं वे संगीत, साहित्य और कला के सौन्दर्य से बंचित रह जाते हैं। विश्व के कण कण में सौन्दर्य और आनन्द भरा हुआ है जिसका आध्यात्मिक दृष्टि से निरीक्षण करने पर मनुष्य को अपार तृप्ति और सुख शान्ति की उपलब्धि हो सकती है। परन्तु दुर्भाग्य की बात है कि चांदी तांबे के टुकड़ों के लिए लोग उन सब तृप्ति दायक आनन्दों से बंचित हो जाते हैं।

प्रार्थना अमोघ अस्त्र है।

(ले०—श्री प्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी, रेवाड़ी।

जिस हृदय में जितनी ही विश्वास की मात्रा अधिक है वह उतना ही अधिक धनी व बलवान् है। विश्वास में वह शक्ति है जो अतर्क्य कार्य को भी कर दिखाती है। महात्मा ईसा के शब्दों में यदि हम में राई भर विश्वास हो तो हम पर्वत को उठा सकते हैं। किन्तु विश्वास जैसी अमूल्य निधि के अधिकारी, उस प्रभू के प्यारे कोई बिरले ही जन होते हैं। निश्चय ही वे अहोभाग्य हैं। उनकी संगति में आने से अविश्वासी हृदयों में भी परिवर्तन हो जाता है। हां, विश्वास भी प्राप्त किया जा सकता है और वह मिलता है-प्रार्थना से।

महात्मा ईसा ने बाइबिल मेंप्रार्थना के विषय में कहा है कि—

"जो प्रभुकी प्रार्थना में आंसू भेंट चढ़ायेगा उसे प्रभु की प्रसन्नता का प्रसाद मिलेगा, और जो गद् गद् होकर उसके आगे रोयेगा वह प्रभुके मन्दिर से निश्चय पूर्वक आनन्द में विह्वल हुवा अपनी आशा की पूर्ति लेकर लौटेगा।"

यदि हम अपने आत्मा के प्रति सच्चे रह कर निज कर्तव्य का प्रमाद रहित होकर यथावत् पालन करें और फिर भगवान् से अपनी शुभ अभिलाषा की पूर्ति के लिये प्रार्थना करें तो निश्चय हमारी प्रार्थना स्वीकार होगी। इसमें सन्देह का अवकाश किंचित् भी नहीं है। यह स्वयं करने की और परखने की बात है। हाँ, लगन और प्रयत्न चिरकाल तक धैर्य पूर्वक बढ़ाना चाहिये। प्रार्थना निराशा की अँधेरी को सूर्य के प्रकाश के समान चमका देती है। प्रार्थना दुःख के तापसे झुलसे हुए हृदयों को सूखी खेती को वर्षा के समान लह लहा देती है। प्रार्थना मृतक हृदयों को जीवित करने के लिये संजीवनी बूँटी है।

देवियो ! अपना देवत्व-प्रकट करो ।

(ले०—राजकुमारी रत्नेश कुमारी 'नीरांजना')

———

जो अधिक से अधिक देते और कम से कम लेते हैं उनको देवता कहते हैं, जो लेना देना बराबर रखते हैं उनको मनुष्य और जो केवल सबसे लेना ही लेना जानते हैं उनको दानव अथवा राक्षस मानना चाहिये। आर्य संस्कृति अपने अनुयायियों को देव अथवा देवी के ही रूप में देखना चाहती है। वह ऐसे स्वर्ण युग का आदर्श चित्र सन्मुख रखती है जब कि अधिकांश परिवारों के सभी व्यक्ति अपने देवत्व से उसे भूस्वर्ग बना रहे हैं।

वह गृह लक्ष्मियों को देवी रूप में देखने को और भी अधिक उत्सुक रहती है। कारण भावी नागरिकों पर उनके देवत्व का गहरा प्रभाव पड़ेगा। जिनकी धमनियों में उन्हीं का दूध खून बन कर लहरा रहा है जो उनकी गोदी में पल कर सर्व प्रथम शिक्षा ग्रहण करते हैं वह शिक्षा अच्छी ही अथवा बुरी उनके हृदय के अन्ततम में प्रवेश कर जाती है।

विचार पूर्वक देखिए, जिस व्यक्ति में जितना ही अधिक देवत्व होगा संसार उसका उतना ही अधिक स्वागत करेगा। मँगतों का स्वागत तो केवल देव प्रकृति वाले व्यक्ति ही कर सकते हैं। जीवन में प्रत्येक नारी का एक बार जब प्रथम बार सुसरालको जाती है तो यह अनुभव करने का सुअवसर मिलता है कि उस पर प्रेम और आदर की सब ओर से वर्षा हो रही है। घर का प्रत्येक व्यक्ति आनन्द विभोर बना फिरता है नव वधू को प्रसन्न करने के लिये सभी नई नई युक्तियाँ सोचते हैं आखिरकार इतना सब क्यों होता है ? और फिर ये आनन्दोत्सव फीका पड़ते पड़ते एक दिन [illegible] क्यों हो जाता है ? वह प्रेम वह आदर वह उमंग कहाँ खो जाती है ?

क्या कभी आपने इस पर विचार किया है ? क्या यह परिणाम अवश्यम्भावी है ? सुनिये ! उन्होंने आशा की थी कि आप देवी हैं उनकी अभिलाषाओं की पूर्ति का वरदान देंगी। उनके घर में निरन्तर सुख शान्ति और प्रेम की वर्षा करेंगी। यदि वे कभी क्षणिक उत्तेजना वश अनर्गल बातें भी कह कर वातावरण को कभी तिक्त बना देंगे तो आप अपने मधुर भाषण से उसमें फिर नवीन माधुर्य की सृष्टि कर देंगी। यदि उनकी भूल भी होगी तो आपको सबके सन्मुख अपमानित नहीं करेंगी कटु व्यंगों से दिल नहीं दुखाएंगी किसी से उनकी निन्दा नहीं करेंगी परन्तु एकान्त में मधुर शब्दों में उनको समझा देंगी। देवियों में भी दुर्गा अथवा सरस्वती की उपमा कोई नहीं देता, वधू को उपमा हमेशा दी जाती है—लक्ष्मी की। इससे यह स्पष्ट प्रगट होता है कि वे आपसे यही आशा रखते हैं कि आप अपनी गृह कुशलता तथा दिव्य स्वभाव से उनके गृह रूपी संसार को श्रीयुक्त (शोभायुक्त) बनावें।

यदि आप उनकी इस कामना की पूर्ति का वरदान दे देवेंगी तो वे आप पर सदैव प्रेम रक्खेंगे आदर करेंगे मुक्त कण्ठ से आपकी सराहना करेंगे, फूले नहीं समायेंगे। वह प्रथम दर्शन का स्वागत् आपका पुराना नहीं होने पायेगा। सब उसी प्रकार आप पर स्नेह, आदर, आत्मीयता, कृतज्ञता तथा आनन्द की वर्षा सर्वदा करते रहेंगे। आपका गृह संसार सदैव स्वर्ग बना रहेगा और आप उस स्वर्ग की लक्ष्मी। यदि आप इसके विपरीत आचरण करेंगी तो दिन दिन यह आनन्दोत्सव, यह शानदार घर की रानी जैसा स्वागत, फीका पड़ता जायेगा। प्रेम तथा सम्मान में न्यूनता आती जायेगी, और सभी आपकी तरफ से उदासीन होते

यदि आपने मानवी स्वभाव रक्खा (जितना लेना उतना देना) तब तो वे आपको किसी प्रकार निभा भी लेंगे पर यदि आपने दानवी प्रकृति को अपनाया (देने के नाम कुछ भी नहीं केवल लेना ही लेना) तो सभी आपसे असन्तुष्ट हो जायेंगे, आपसे दूर दूर रहेंगे और आपकी निन्दा करेंगे आपसे कटु शब्द कहेंगे अपमान करेंगे और आपकी तनिक भी पर्वाह नहीं करेंगे। इस भांति आपका गृह आपके ही आचरणों के कारण नरक बन जायेगा। आप भी ऊब उठेंगी ऐसे कड़ुए जीवन से।

अतएव आपके सामने तीन रास्ते खुले हैं। १—देवी बनना। २—मानवी बनना। ३—दानवी बनना। चुन लीजिये आपको कौन सा चुनना है? आर्य संस्कृति निरन्तर कह रही है—

तुम देवी हो? इसलिए अपना देवत्व प्रकट करो।

———

जब तक संसार में कीट पतङ्ग आदि की मुक्ति नहीं हो जायगी तब तक मैं अपनी मुक्ति नहीं चाहता।

—महात्मा बुद्ध।

× × ×

सात्विक सहायताऐं।

इस मास ज्ञान यज्ञ के लिए निम्न सहायताऐं प्राप्त हुई। अखण्डज्योति इन महानुभावों के प्रति अपनी आन्तरिक कृतज्ञता प्रकट करती है।

२५) श्री० हरीराम जी कटनी।
२५) श्री० केशरीमल जी कोठारी बम्बई।
१५) श्री० हरीराम जी लखीमपुर गिरी।
५) चौ० रूपसिंहजी सब इन्सपेक्टर पुलिस, पाली।
३।) श्री० धूमसिंह वर्मा, समौली।

———

व्यवहारिक ज्ञान।

———

जिस तरह आमको बिना खाये, रखे रहने से, उसका स्वाद नहीं मालूम होता, उसी तरह शिक्षा और ज्ञान का व्यवहार हुये बिना कुछ उपयोग नहीं है।

पठन-पाठन और वाचन का ज्ञान चाहे वह कितना भी अधिक क्यों न हो, अन्त में पुस्तक में ही रह जायगा। जो ज्ञान हमें जीवन की प्रत्यक्ष बातों से अनुभव द्वारा मिलता है, वही सच्चा ज्ञान है। छटांक भर ऐसा ज्ञान सेर भर पण्डिताई से बहुत अच्छा समझा जाता है।

संसार में जो बड़े बड़े विख्यात पुरुष होगये हैं वे अधिक पढ़े लिखे नहीं थे। पहिले जमाने में इतनी किताबें ही नहीं थीं। आजकल की लाखों करोड़ों पुस्तकों की जगह उस ज़माने में एकाध पुस्तक मुश्किल से मिलती थी। परन्तु किताबें पढ़े बिना ही पूर्व युग के मनुष्य एक से एक पढ़ कर गुणवान और कार्यशील होगये हैं।

आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि जिस मनुष्य ने अपनी बुद्धि के छोटे से नमूने के स्वरूप में संसार को रेलगाड़ी बनाना सिखलाया है वह पढ़ा लिखा नहीं था।

तात्पर्य यह है कि संस्कृत, अरबी, फ़ारसी, अथवा, ग्रीक, लेटिन और अँग्रेजी या अन्य भाषाओं के व्याकरण में वाक्यों का जन्म भर विन्यास करते रहने से ही कुछ साहस और कार्य-शीलता की वृद्धि नहीं हो जाती। इसी तरह मौलिकता तथा नूतनता तर्क शास्त्र हज़ारों पृष्ठों को भी पढ़ने से नहीं आती ये सब बातें प्रत्यक्ष व्यवहार से प्राप्त हुआ करती हैं।

———

आदेश बनाम विवेक।

सिद्धान्तों का परीक्षण करना आवश्यक है। क्यों कि परस्पर विरोधी सिद्धान्तों का सर्वत्र अस्तित्व प्राप्त होता है। एक ओर जहां हिन्सा को, बलिदान या कुर्बानी को, धर्मों में समर्थन प्राप्त है वहाँ ऐसे भी धर्म हैं जो जीवों की हत्या तो दूर उन्हें कष्ट पहुंचाना भी पाप समझते हैं। इसी प्रकार ईश्वर, परलोक पुनर्जन्म, अहिंसा, पवित्र पुस्तक, अवतार पूजा विधि, कर्मकाण्ड, देवता आदि विषयों के मतभेदों से धार्मिक क्षेत्र भरे पड़े हैं। सामाजिक क्षेत्रों में वर्णभेद, स्त्री अधिकार, शिक्षा, रोटी, बेटी, आदि प्रश्नों के सम्बन्ध में परस्पर विरोधी विचारों की प्रबलता है। राजनीति में प्रजातंत्र साम्राज्यवाद, पूँजीवाद, अधिनायकवाद, समाजवाद आदि अनेकों प्रकार की परस्पर विरोधी विचार धाराऐं काम कर रही हैं। उपरोक्त सभी प्रकार की विचार धाराऐं आपस में खूब टकराती भी हैं। उनके समर्थक और विरोधी व्यक्तियों की संख्या भी कम नहीं हैं।

जब कि सिद्धान्तों में इस प्रकार के घोर मत भेद विद्यमान हैं तो एक निष्पक्ष जिज्ञासु के लिए, सत्य शोधक के लिए, उनका परीक्षण आवश्यक है। जब तक यह परख न लिया जाय कि किस पक्ष की बात सही है किसकी गलत? किसका कथन उचित है किसका अनुचित? तब तक सत्य को समीप तक नहीं पहुंचा जा सकता। यदि परीक्षा और समीक्षा को आधार न बनाया जाय तो किसी प्रकार उपयोगी और अनुपयोगी की परख नहीं हो सकती।

महाजनो ये न गतो स पन्था' के अनुसार महाजनों का-बड़े आदमियों का—अनुसरण करने की प्रणाली प्रचलित है। साधारणतः लोग सैद्धान्तिक बातों के सम्बन्ध में अधिक माथा पच्ची करना पसंद नहीं करते। दूसरों की नकल करना सुगम पड़ता है, निकटवर्ती बड़े आदमी जो कहदें उसे मान लेने में दिमाग पर जोर नहीं डालना पड़ता अधिकांश जनता की मनोवृति ऐसी ही होती है। परन्तु इस प्रणाली से सत्य असत्य की समस्या सुलझती नहीं। क्यों कि जिन्हें हम महापुरुष-महाजन समझते हैं संभव है वे भ्रान्त रहे हों। और दूसरे लोग जिन्हें महापुरुष समझते हैं संभव है उन्हीं की बात ठीक है। जब कि अनेक व्यक्ति एक प्रकार के विचार वाले महाजन की बात ठीक मानते हैं और उसी प्रकार अनेक व्यक्ति दूसरे महाजन की, दूसरे प्रकार के विचारों को मान्यता देते हैं। तब यह निर्णय कठिन हो जाता है कि इन दोनों के कथनों में किसका कथन उचित है किसका अनुचित?

महापुरुष दो प्रकार से अपने विचारों को व्यक्त करते हैं। (१) लेखनी द्वारा। (२) वाणी द्वारा। वाणी द्वारा प्रकट किये हुए विचार क्षणस्थायी होते हैं इसलिए उन्हें चिरस्थायी करने के लिए लेख बद्ध किया जाता है। विचारों के व्यवस्थितको लेखन—यही ग्रन्थ या पुस्तक कहते हैं। जिन ग्रन्थों में धार्मिक या आध्यात्मिक विचार लिपि बद्ध होते हैं उन्हें शास्त्र कहते हैं। शास्त्रों को लोग एक स्वतंत्र सत्ता का स्थान देने लगे हैं। जैसे देवता की अपनी एक स्वतंत्र सत्ता समझी जाती है वैसी ही शास्त्र भी स्वतंत्र सत्ता बनने लगे हैं। परन्तु बात ऐसी नहीं है। वे महाजनों के विचार ही तो हैं। जैसे महाजन भ्रान्त हो सकते हैं—होते हैं वैसे ही शास्त्र भी हो सकते हैं। एक शास्त्र द्वारा दूसरे शास्त्र के अभिमत का खण्डन करना यही प्रकट करता है कि एक समान श्रेणी के महाजनों में प्राचीन काल में भी इसी प्रकार मत भेद रहता था जैसा कि आजकल अनेक समस्याओं के संबंध में हमारे नेता आपसी मतभेद रखते हैं।

आज नेताओं के मत भेद में से छान कर हम वही बात ग्रहण करते हैं जो हमारी बुद्धि को अधिक

उचित और आवश्यक जँचती है । किसी नेता के मत से सहमति न रखते हुए भी उसके प्रति आदर-भाव रहता है इसी प्रकार स्वर्गी महाजनों—महापुरुषों—को लेखबद्ध विचार प्रणाली के सम्बन्ध में भी होना चाहिए । शास्त्र का अन्धानुकरण नहीं होना चाहिए वरन् उनके प्रकाश में सत्य को ढूँढ़ना चाहिए । अन्धानुकरण कोई किया भी नहीं जा सकता । क्यों कि कभी कभी एक हो शास्त्र में दो विरोधी आदर्श मिलते हैं । हमारे शास्त्रों में जीवित प्राणियों को मारकर अग्नि में होम देने का भी विधान है और जीवमात्र पर दया करने का भी । दोनों ही आदेश पवित्र धर्म ग्रन्थों में मौजूद हैं। वे शास्त्र हमारे परम आदरणीय और मान्य हैं तो भी इनके आदेशों में से हम वही बात आचरण में लाते हैं जो बुद्धि संगत, उचित और आवश्यक दिखाई पड़ती है ।

हिन्दू धर्म किसी व्यक्ति या उसके लेख बद्ध विचारों को अत्यधिक महत्व नहीं देता। चाहे वह व्यक्ति कितना ही बड़ा महापुरुष ऋषी महात्मा या ईश्वर ही क्यों न रहा है। हिन्दू धर्म में सिद्धान्तों की समीक्षा और उसके बुद्धि संगत अंश को ही ग्रहण करने की ही परिपाटी का समर्थन किया गया है। किसी बड़े से बड़े व्यक्ति या ग्रन्थ से मतभेद रखने और उसके मन्तव्यों को स्वीकार करने न करने की उसमें पूर्ण सुविधा है । हां, किसी की महानता को कम करने की आज्ञा नहीं है । महापुरुषों और पवित्र ग्रन्थों का समुचित आदर करते हुए भी उनकी सम्मति में से बुद्धि संगत अंश को ही ग्रहण करने का आदेश है। इसी आदेश के आधार पर प्राचीन समय में सच्चे जिज्ञासुओं ने सत्य की शोध की है और अब भी वही मार्ग अपनाना होता है ।

हिन्दू धर्म में भगवान बुद्ध को ईश्वर का अवतार माना गया है। दश अवतारों में उनकी गणना है। इससे अधिक ऊँचा आदर, श्रद्धा, महत्व और क्या हो सकता है ? भगवान बुद्ध भी हिन्दुओं लिए वैसे ही पूज्य हैं जैसे अन्य अवतार । महान् व्यक्तित्व, त्याग, तप, संयम, ज्ञान साधन के आगे सहज ही हर व्यक्ति का मस्तक हो जाता है। उनके चरणों पर हृदय के अन्तस् से निकली हुई गहरी श्रद्धा के फूल चढ़ा कर लोग अपने को धन्य मानते हैं। इतने पर भी वान बुद्ध के विचारों का हिन्दू धर्म में प्रबल वि है। श्री० शंकराचार्य ने उनके मत का खण्डन क का प्राण प्रण प्रयत्न किया है । बौद्ध विचारों उनके सम्प्रदाय को स्वीकार करने के लिए हिन्दू तैयार नहीं है, तो भी उनके व्यक्तित्व भगवान का दर्शन करता है।

बात यह है कि व्यक्तित्व और सिद्धान्त भिन्न वस्तुऐं हैं । कोई सिद्धान्त इसलिए म नहीं हो सकता कि उसे अमुक महापुरुष ने अमुक ग्रन्थ ने प्रकाशित किया है। इसी प्रकार कि घृणित व्यक्ति द्वारा कहे जाने या प्रतिपादन जाने से कोई सिद्धान्त अमान्य नहीं ठहरता । कोई चोर यह कहे कि " सत्य बोलना उचित है तो उसे इसलिए अस्वीकार नहीं किया जा सक कि यह बात चोर ने कही है । चोर का घृ व्यक्तित्व भिन्न बात है और 'सत्य बोलने' सिद्धान्त अलग चीज है। दोनों को मिला दें तो बड़ा अनर्थ हो जायगा । चूँकि चोर ने स बोलने के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है इस वह सिद्धान्त अमान्य नहीं ठहराया जा सक इसी प्रकार कोई बड़ा महात्मा किसी अनुपय बात का उपदेश करे तो उसे मान्य नहीं ठहर जा सकता। कई अघोरी साधु अभक्ष भक्षण क हैं, यद्यपि उनकी तपश्चर्या ऊँची होती है तो उनके आचरण का कोई अनुकरण नहीं करत निश्चय ही व्यक्तित्व अलग चीज है और सिद्धा अलग चीज है । महात्मा कार्लमार्क्स, एंजि लेनिन आदि का चरित्र बड़ा ही ऊँचा था वे अ

य के उत्कट विद्वान भी हैं। उनके उज्वल चरित्र के लिए दुनियां शिर नवाती है पर उनका अनीश्वरवादी मत मान्य नहीं किया जाता।

प्राचीन समय में भी आज की भांति ही परस्पर विरोधी मत प्रचलित थे। जैसे आज अनेकानेक विचार धाराओं के मतभेद पर बारीक दृष्टि डालकर उसमें से उपयोगी तत्व ग्रहण करने को विवश होना पड़ता है वही बात प्राचीन समय के सम्बन्ध में लागू होती है। आधुनिक महापुरुषों के विचारों से जीवन निर्माण कार्य में हमें मदद मिलती है, उसी प्रकार प्राचीन काल के स्वर्गीय महापुरुषों के लेखबद्ध विचारों से—धर्मग्रन्थों से—लाभ उठाना चाहिए। परन्तु अन्ध भक्त किसी का नहीं होना चाहिए। यह हो सकता है कि प्राचीन काल की और आज की स्थिति में अन्तर पड़ गया हो जिससे तब के विचार आज के लिए उपयोगी न रहे हों, यह भी हो सकता है कि उनने किसी बात को अन्य दृष्टिकोण से देखा हो। और आज उसे किसी अन्य दृष्टि से देखा जा रहा हो। एक समय समझा जाता था कि चातक स्वाति नक्षत्र का ही पानी पीता है, पर अब प्राणिशास्त्र के अन्वेषकों ने देखा है कि चातक रोज पानी पीता है। हंसों का मोती चुगना, या दूध पानी को अलग कर देना भी अब अविश्वस्त ठहरा दिया गया है। इसी प्रकार अन्य अनेक बातों में भी प्राचीन काल के सिद्धान्तों में और आज की शोधों में अन्तर आगया है। इन अन्तरों के सम्बन्ध में हमें परीक्षक बुद्धि से कोई मत निर्धारित करना पड़ता है। आधुनिक या प्राचीन होने में ही कोई सिद्धान्त मान्य या अमान्य नहीं ठहरता। शास्त्रकारों का भी यही मत है कि—"बालक के भी युक्तियुक्त वचनों को मानले परन्तु यदि युक्ति विरुद्ध हो तो ब्रह्मा की भी बात को तृण के समान त्याग दे।"

——

भ्रान्ति से मुक्ति के उपाय।

(श्री डा० दुर्गाशंकर जी नागर संम्पादक 'कल्पवृक्ष')

——

बुद्धि को तर्क की भूलभुलैयों में डालने से भ्रान्ति और संशय दूर नहीं होते। आप प्रश्न करेंगे कि क्या भ्रान्ति रहित कोई प्रदेश है? हां अवश्य है, और वह है तुम्हारी अन्तरात्मा। अन्तरात्मा में भ्रान्ति का सर्वथा अभाव है। अन्तरात्मा में प्रवेश करने से भ्रान्ति रहित स्थान का अनुभव होता है। भ्रान्ति वाले विचारों को तिलांजली दो और शुद्ध शुभ विचारों का सेवन करो। प्रयत्नपूर्वक श्रद्धा सहित उन्हीं में रमण करो। यह अन्तरात्मा में प्रवेश करने का प्रथम सोपान है।

इन्द्रिय और बुद्धि के व्यापार बन्द करके प्रेरक आत्मा में जो स्थिर हो चुके हैं, उन्हीं को आत्म प्रतीति होती है। अतः अपने में कभी भी विक्षेप, उद्विग्नता, भ्रान्ति का प्रवेश न होने दो। सदा यह समझो कि ईश्वर की सदैव तुम्हारे ऊपर कृपा है। वे आदि पुरुष सदैव तुम्हारे ऊपर सुख शान्ति की वर्षा करते हैं। उच्चस्वर से कहो—"मैं चैतन्यस्वरूप आत्मा हूं।" इन दिव्य शब्दों को प्रातःकाल या सायंकाल स्मृति पट पर अंकित करलो। इस सत्य की भावना को हृदय में आरूढ़ करने से तुम्हारा जीवन सुख शान्तिमय हो जायगा।

——

वर की आवश्यकता है।

हिन्दी-संसार के एक प्रसिद्ध सम्पादक की सुंदर, सुशील व गृहस्थी के कार्यों में निपुण १५ वर्ष आयु की कन्या के लिये। वे जन्म से वैश्य (जैन) हैं पर जात-पांत की प्रथा के पूर्णतया विरुद्ध होने से किसी भी जाति के सुयोग्य और स्वावलम्बी युवक से सम्बन्ध किया जा सकता है।

पत्र-व्यवहार का पता—सम्पादक अखंड-ज्योति, मथुरा।

ईश्वर हमारे अन्दर है।

(योगिराज, श्री०शिवकुमार जी शास्त्री)

हमने ईश्वर का दर्शन किया है। पर, इन आंखों से नहीं, ज्ञान से। बाहर, नहीं, भीतर। अलग नहीं, अपने में, वह दूसरा नहीं है, हमारी आत्मा है। इसे समझो, और इसके गूढ़ अर्थ पर विचार करो। सच्ची शान्ति और सच्चा आनन्द इसी ज्ञान के भीतर वर्त्तमान है।

तुम सुख व शान्ति के लिये वृत्त वा परिधि की ओर दौड़ते हो—तुम केन्द्र को छोड़ कर संसार में भटकते हो--पर क्या वह शान्ति मिल सकती है ? कदापि नहीं।

यदि तुम शान्ति और आनन्द के भूखे हो तो वृत्त, परिधि वा संसार को छोड़कर केन्द्र में-भीतर-अपने आपमें-मन से सिमिट कर स्थित होजाओ। यहीं शान्ति, आनन्द और सुख का भण्डार है, यहीं सच्चिदानन्द का निवास है।

संसार में केवल दो पदार्थ हैं। एक जड़ दूसरा चेतन। एक अनात्मा दूसरा आत्मा। अनात्मा स्थूल संसार है और आत्मा ईश्वर है। हम और तुम दोनों आत्मा हैं इसलिए हम और तुम दोनों ईश्वर हैं। हम और तुम दोनों आनन्द और शांति के अगाध समुद्र हैं।

ईश्वर को, हम, न आँखों से देख सकते, न कान से सुनते हैं। न नाक से सूंघ सकते न जिह्वा से स्वाद ले सकते हैं। न हाथ से छू सकते हैं। स्थूल मन भी वहां तक नहीं पहुंच सकता। केवल अपने भीतरी ज्ञान और विचार से वहाँ तक नहीं पहुंच सकते हैं। अतः जब उसे विचार करके ध्यान से देखा तो वह हमारी आत्मा के अन्दर था जहां शान्ति और आनन्द की लहर सर्वदा उठा करती है।

जो जैसा होता है उसी को अपनी ओर खींचता है। जलराशि समुद्र, भूमण्डल की सब नदियों को अपनी ओर खींच लेता है। लड़कों के पास लड़के, वृद्धों के पास वृद्ध और लुटेरों के पास लुटेरे इकट्ठे होजाते हैं। अतः सर्वदा प्रसन्न रहो हँसते रहो और आनन्दमय रहो। इसका फल यह होगा कि चारों ओर से संसार का सारा आनन्द और सुख तुम्हारी ओर झुक पड़ेगा, खिंचा हुआ और बहता हुआ चला आवेगा।

जैसे को तैसा खींचता है। समान के पास समान जाता है। गँजेड़ी के पास गँजेड़ी, भँगेड़ी के पास भँगेड़ी और शराबी के पास गांव भर के शराबी एकत्र होजाते हैं। मनुष्य के चरित्र का पता उसकी मित्रमंडली से बहुत कुछ लग सकता है। अतएव यदि हमें सच्चिदानन्द को पास और अपने हृदय में बुलाना है तो हमें स्वयं सच्चिदानन्द बन जाना चाहिये।

समान को अपने समान वाली वस्तुओं को खींचने की अद्भुत शक्ति होती है। पक्षियों के पास पक्षी, भेड़ियों के पास भेड़िये और हिरनों के पास हिरन आपसे आप जुट जाते हैं। अतः यदि ईश्वर को अपने हृदय में बुलाना है तो पहिले हृदय उन्हीं शुभ गुणों को धारण करो जो ईश्वर वर्त्तमान हैं। ईश्वर के खींचने के लिए तुम्हें स्वयं ईश्वर बनजाना चाहिये।

मुक्ति का अर्थ यह नहीं है कि जीव ईश्वर मिलजाता है या मनुष्यात्मा ईश्वरत्व के समुद्र डूब मरता है। ऐसा हो तो कोई विचारवान् मुक्ति को न चाहेगा। मुक्ति की अवस्था में ज्ञान द्वारा ईश्वर ही जीव में मिल जाता है। जीव ईश्वर में नहीं। जिसको साधारण मनुष्य बिन्दु कहते वही ज्ञान होने पर समुद्रसावित होता है। ईश्वर ज्ञान को समझो बस सुख की सामिग्री और आनन्द का समुद्र तुम्हारे भीतर मौजूद है। और तुम सम्राट के भी सम्राट हो।

। एक दिन का समय 'अखंड-ज्यो।।

आपकी इस सहायता से अखण्डज्योति की शक्ति बहुत बढ़ जायगी ।

(ले०—श्री० सोमेश्वर नाथ भट्टाचार्य एम० ए०, कलकत्ता)

ड ज्योति के आरम्भ काल से ही उसके पर्क रखने के कारण-आचार्य जी तथा के बीच होने वाले विचार परिवर्तन से होने के कारण—मुझे मालूम है कि पाठक- खंडज्योति के प्रति तथा आचार्य जी के ना प्रगाढ़ आदर तथा सम्मान रखते हैं, नी ऊँची दृष्टि से देखते हैं ।

का इस अध्यात्मिक के प्रति प्रेम, अनुग्रह आत्म भाव है, वे यह पूछते रहते हैं हमारे योग्य कोई हो तो लिखिए ।" ज्योति व्यापारिक नहीं त्मिक संस्था है । सेवा यही है कि— विचारों का, सद्ज्ञान और सदाचार का धिक प्रचार एवं प्रसार जाय"। इस प्रकार की ता एवं सेवा करने से न संस्थान की उद्देश्य होती है ।

खण्डज्योति पत्रिका को यहाँ से प्रकाशित अन्य ग्रंथ को अधिक से क व्यक्ति पढ़ें इस कार्यक्रम में सहयोग देकर क इस मिशन की सहायता कर सकते हैं। का के सम्पादक श्री० आचार्यजी का ९ दिसम्बर जन्म दिन है । परिवार के आत्मीयजन उसदिन लि सद्भावनाऐं भेजते हैं । इस अवसर ल शाब्दिक शिष्टाचार का ही नहीं वरन् ज्ञता का भी परिचय देना चाहिए । ता० ९

अखंडज्योति के सम्पादक—

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य ।

सक्रिय सहायता के लिए देना चाहिए । उस दिन अखण्डज्योति के नये ग्राहक बढ़ाने के लिए निकलना चाहिए । प्रयत्न करने पर कुछ न कुछ नये ग्राहक अवश्य बढ़ाये जा सकते हैं । नये ग्राहकों का चंदा वसूल करके अपने चंदे के साथ भेज देना चाहिए । हम लोगों के लिए यह सब बहुत ही सरल है । एक दिन इस धर्म कार्य के लिए दे देने से कोई बड़ा घाटा नहीं आ सकता । पर इससे अखण्डज्योति की शक्ति अनेक गुना बढ़जाती है।

जो सज्जन पाठक बनते हैं उन्हें अपने आचरण और विचारों में परिवर्तन करने का अलभ्य अवसर मिलता है । लगातार नियमित रूप से जो एक वर्ष अखण्डज्योति को पढ़ लेगा उसके जीवन में सतोगुणी असाधारण परिवर्तन होने अवश्य भावी हैं । उच्च अध्यात्मिक सत्पुरुष,तपोपूत अन्तःकरण सेजिन विचारों को प्रकट करते हैं वे लोगों के मन में तीर की तरह धँस जाते हैं । जीवनों में सात्विक परिवर्तन कराना ब्रह्म यज्ञ है । जो सज्जन अखण्डज्योति के पाठक बढ़ाते हैं वे ब्रह्म यज्ञ का प्रत्यक्ष आयोजन करते हैं। ब्रह्म यज्ञ का पुण्य फल किसी अन्य यज्ञ से कम नहीं है ।

अखण्डज्योति को प्रेम करने वाले सज्जनों के लिए यह एक परीक्षा अवसर है । ता० ९ दिसम्बर को आचार्यजीके जन्म-दिवसके उपहार स्वरूप अपना एक दिन का समय देना चाहिए और उसदिन अखंड- ज्योति के ग्राहक बढ़ाने का प्रयत्न करना चाहिए ।

झरने का आत्म परिचय।

(ले०—श्री आद्याप्रसाद शर्मा 'शुचि')

---

(१)

भुकी करुणा का सबल, सजल-संचय हूँ, पत्थर का पिघला हुआ कठोर हृदय हूं।
म पूछ रहे हो पथिक, आज बतलाऊँ, मैं निर्भर, अपना एक स्वयं परिचय हूं॥
शत-सहस्र तूफान लिए आया मैं, फिर भी लहरों में गान लिए आया मैं।
भिशप्त विश्व के, ऊसर पर करुणा कर, उर्वरता का वरदान लिए आया मैं॥

(२)

यह तोड़-फोड़ दृढ़ पाषाणों की कारा, झरती झर-झर मेरी निर्मल जल-धारा।
करने जो गति-अवरोध सामने आया—पाया कब उसने त्राण, प्राण तक हारा॥
सीखा मुझसे कलियों ने नित मुसकाना, नभने धरती पर करुणा-जल बरसाना।
सीखा नन्दन-कानन की कल कोकिल ने, मेरी लहरों की ध्वनि से मंजुल-गाना॥

(३)

न कभी रुकना जीवन में सीखा, मैंने न कभी झुकना जीवन में सीखा।
अन्तर में सरस-स्रोत-लहरी जो, इसने न कभी चुकना जीवन में सीखा।
गात सभी निश्चल सहता जाता हूं, अपनी प्रगति-गाथा कहता जाता हूं।
सिन्धु-मिलनकी चाह अमिट अन्तर में, उठ-उठकर गिर-गिरकर बहता जाता हूं॥

(४)

हो मधु-प्रभात या सघन-रातकी बेला, पथ हो निर्जन या लगा हुआ हो मेला।
यह देख सकूँ, इतना अवकाश कहाँ है? चलता ही जाता हूं, अविराम अकेला॥
मेरा आकुल आह्वान सुने मत कोई, मेरे उरके अरमान सुने मत कोई।
परवाह नहीं, मुझको बढ़ते जाना है, मेरे जीवन के गान सुने मत कोई॥

(५)

वन-उपवन पार किये हैं मैंने, निर्मित सुखद संसार किये हैं मैंने।
कृतज्ञ जग, अङ्गीकार करेगा, उसके अगणित उपकार किये हैं मैंने॥
बढ़ना होता जिनको न सहन है, उनके दुःखपर भी मुझको संवेदन है।
तिका अवसान किन्तु क्यों होगा, जब शक्ति पूर्ण, प्राणों में स्पन्दन है॥